प्राक्कथन

बोधगया में बोधि प्राप्ति के बाद सम्यक संबुद्ध गौतमबुद्ध ने पैंतालीस वर्षों तक गांव, निगम, नगर, जनपद में चारिका करते हुए भिन्न-भिन्न लोगों से अकेले तथा समूह में मिलकर दुःख को दूर करने तथा सुखमय और शांतिमय जीवन जीने की कला सिखाने के लिए जो उपदेश दिये उनका वर्गीकरण बाद में तीन पिटकों के रूप में किया गया। ये तीन पिटक हैं –विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में भिक्षु तथा भिक्षुणी जीवन को सम्यक रूप से शीलपूर्वक बिताने के लिए तथा संघ को सुचारु रूप से चलाने के लिए बनाये गये नियम तथा समय-समय पर उनमें किये गये परिवर्तन संगृहीत हैं। इसलिए विनय पिटक को 'आणा (आज्ञा) देसना' कहते हैं। सुत्तपिटक को 'वोहार (व्यवहार) देसना' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रमुखतः बुद्ध के और उनके प्रधान शिष्यों के जीवन में व्यवहार में लाये जाने वाले उपदेशों का संग्रह है। इन उपदेशों में जो सुत्त (सु+उक्त) कहे जाते हैं उन्हें सरल शैली में उपयुक्त उपमाओं तथा रूपकों के माध्यम से आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए बताया गया है। साथ ही ऐसा जीवन बिताने में कौन-कौन-सी बाधाएं आ सकती हैं, उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है –इन बातों पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। सिर्फ आध्यात्मिक जीवन के बारे में ही नहीं, बल्कि भौतिक जीवन को भी कैसे अच्छी तरह जीया जा सकता है तथा सामाजिक जीवन में शांति और समरसता कैसे लायी जा सकती है –इन सभी बातों पर भी प्रकाश डाला गया है। अभिधम्म पिटक में परमार्थ सत्य से संबंधित बातें हैं इसलिए इसे 'परमत्थ देसना' कहते हैं। अभिधर्म के अनुसार परमार्थ चार हैं –चित्त, चैतसिक, रूप तथा निर्वाण। इस पिटक में इन्हीं परमार्थों का विस्तार से वर्णन है।

सुत्तपिटक पांच निकायों में विभक्त है –दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय।

दीघ निकाय में बड़े आकार के चौंतीस सुत्त, मज्झिम निकाय में मध्यम आकार के एक सौ बावन सुत्त संगृहीत हैं। संयुत्त निकाय में सात हजार सात सौ बासठ सुत्त हैं और इसे संयुत्त इसलिए कहा जाता है कि इसके पहले भाग में गाथा और गद्य दोनों मिले हुए हैं। अंगुत्तर निकाय में नौ हजार पांच सौ सत्तावन सुत्त हैं जो ग्यारह निपातों में संगृहीत हैं। खुद्दक निकाय में छोटे-छोटे उन्नीस प्रकरणों का संग्रह है जैसे खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात आदि।

इन निकायों के सुत्तों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें अभिधर्म के तत्त्व हैं। दीघ निकाय के सामञ्ञफलसुत्त में चार रूपावचर ध्यानों का, पांच ध्यानांगों

का, पांच नीवरणों का उल्लेख है तो मज्झिम निकाय के सम्मादिट्ठि सुत्त में कुशल-अकुशलधर्मों का, उनके मूलों - जैसे अलोभ, अद्वेष, अमोह तथा लोभ, द्वेष, मोह का, अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगों का, प्रतीत्यसमुत्पाद के बारह निदानों का तथा चार आर्य सत्यों का उल्लेख है। उसी तरह संयुत्त निकाय तथा खुद्दक निकाय के उदान, इतिवुत्तक, धम्मपद आदि प्रकरणों में भी अभिधर्म के तत्त्व बिखरे पड़े हैं।

अंगुत्तर निकाय के एककनिपात से लेकर एकादशकनिपात में एक से लेकर उत्तरोत्तर बढ़ते क्रम से ग्यारह धर्मों के संबंध में भगवान बुद्ध के उपदेश संगृहीत हैं। वह काम दीघ निकाय के 'दसुत्तर' और 'संगीतिपरियाय' सुत्तों में तो किया ही गया है, अंगुत्तर निकाय में और भी विस्तार से किया गया है। इसके निपातों में एक से लेकर एकादशक निपात में अंकोत्तर वृद्धि होती चली गयी है और एक से, दो से, तीन से... इस तरह क्रमशः ग्यारह धर्मों के संबंध में बुद्ध के उपदेश पाये जाते हैं – इसलिए इसे अंगुत्तर निकाय कहते हैं जो सार्थक है। एककनिपात में ही हम देखते हैं कि यहां पांच इंद्रियों तथा उनके पांच विषय जैसे रूप, शब्द, गंध, रस और स्प्रष्टव्य के बारे में कहा गया है –

'भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को, शब्द को, गंध को, रस को, स्पर्श को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे, भिक्षुओ, स्त्री का रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श।'

'भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा अत्यधिक विपुल होती है जैसे, भिक्षुओ, यह शुभ निमित्त (राग पैदा करने वाला निमित्त)।'

एक धर्म चित्त की भावना करने के क्या लाभ हैं, इसका दमन न करने से क्या हानि होती है एक धर्म प्रज्ञा की परिहानि धन की परिहानि से अधिक चिंतनीय है; कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म की शुद्धता से कभी भी अनिष्ट व अप्रिय विपाक के उत्पन्न होने की संभावना नहीं है, दस अनुस्मृतियों जैसे बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति आदि की भावना करने से विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है; मिथ्या दृष्टि से क्या हानि है, सम्यक दृष्टि के क्या लाभ हैं; सतिपट्ठान (स्मृति उपस्थान) की चारों अनुपश्यनाओं जैसे कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना की संप्रज्ञ तथा स्मृतिमान होकर तथा राग और द्वेष का विनयन कर कैसे भावना की जाती है, कायगत स्मृति से अमृत (निर्वाण) की प्राप्ति कैसे होती है आदि बातों (धर्मों) का यहां उल्लेख है।

द्विक निपात में दो कृष्ण धर्मों (अहिरिक तथा अनोत्तप्प) और दो शुक्ल धर्मों (हिरि तथा ओत्तप्प) का उल्लेख है। दो धर्म (शमथ तथा विपश्यना) विद्याभागीय हैं। शमथ की भावना करने से राग का प्रहाण होता है और विपश्यना की भावना करने से अविद्या का प्रहाण होता है जिन्हें, क्रमशः, चित्त विमुक्ति और प्रज्ञा विमुक्ति कहते

हैं। इसी निपात के सुखवर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों का उल्लेख है तथा यहां यह भी कहा गया है कि प्रव्रज्या सुख, नैष्क्रम्य सुख तथा अनाश्रव सुख; गृही सुख, काम सुख तथा साश्रव सुख से श्रेष्ठ है। दो प्रकार के मूर्ख, दो प्रकार के पंडित, दो प्रकार के बल, दो प्रकार के मनुष्य तथा दो प्रकार की परिषदों का भी उल्लेख यहां है। धर्मवर्ग में दो-दो धर्म जैसे चित्त विमुक्ति तथा प्रज्ञा विमुक्ति, नाम तथा रूप, हिरि तथा ओत्तप्प आदि का भी उल्लेख है। दानवर्ग में दान, यज्ञ, त्याग, परित्याग, भोग, संभोग आदि के दो-दो भेद बताये गये हैं – जिनमें एक भौतिक है और दूसरा आध्यात्मिक ।

त्रिक निपात में तीन प्रकार के कर्म जैसे कायिक ,वाचिक तथा मानसिक ;तीन प्रकार के पुद्गल जैसे शून्याश, आशावान तथा पूर्णाश; कायसाक्षी, दृष्टिप्राप्त तथा श्रद्धाविमुक्त; अवकुब्जप्रज्ञ, उत्संगप्रज्ञ तथा पृथुप्रज्ञ; तीन प्रकार के संस्कार जैसे कायिक ,वाचिक तथा मानसिक ; तीन प्रकार के अकुशलमूल जैसे लोभ, द्वेष तथा मोह; तीन प्रकार के कुशलमूल जैसे अलोभ, अद्वेष तथा अमोह; तीन प्रकार के देवदूत जैसे जरा, व्याधि तथा मृत्यु; तीन प्रकार के मद जैसे यौवन मद, आरोग्य मद तथा जीवित मद आदि धर्मों का उल्लेख है।

इसी निपात के महावर्ग में (विभिन्नवाद सुत्त में) भगवान ने कहा है कि तैर्थिकों के मत में अकर्मण्यतावाद एक पारंपरिक अकर्मण्यतावाद है। उनके अनुसार मनुष्य जो भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह या तो पूर्वकर्मों का फल है या ईश्वर निर्मित है या बिना कारण के उत्पन्न है। इन मतों को सारभाव से ग्रहण करनेवालों में 'न तो कामना ही जगती है और न वे प्रयत्न करते हैं और न इस काम को करने का या उस काम को न करने का उत्साह ही होता है। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती।' इसलिए उन्हें 'श्रमण' कैसे कहा जाय? इसके विपरीत भगवान बुद्ध के उपदेशों में प्रयत्न का महत्त्व है और सुधार का अवकाश भी, क्योंकि उन्होंने जो उपदेश दिया उसका सार यह है कि 'छः धातुओं के होने से गर्भ होता है, गर्भ होने से नाम-रूप, नाम-रूप होने से छः आयतन, छः आयतन होने से स्पर्श तथा स्पर्श होने से वेदना। जिसे वेदना की अनुभूति होती है उसी के संबंध में, भिक्षुओ, मैं 'यह दुःख है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं।

इसी निपात में प्रसिद्ध केसमुत्ति सुत्त है जिसे मानव के स्वतंत्र चिंतन का महान घोषणापत्र (Magna Carta) माना जाता है। इससे भगवान बुद्ध का बुद्धिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने कालामों से कहा कि अपने अनुभव से जो अच्छा लगे उसे मानो तथा उसके अनुसार आचरण करो।

'हे कालामो! आओ, तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत ... है,

केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्मग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों पर चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो।

यहां भगवान ने यह तो कहा ही है कि कितनी ही सुदीर्घ परंपरा से कोई बात क्यों न आ रही हो, कितने ही लोग उसके बारे में कहने वाले क्यों न हों, यहां तक कि धर्मग्रंथ में भी यदि वह बात क्यों न हो, तर्क-सम्मत, अनुमान-सम्मत, परीक्षित, अनुमोदित या आकर्षक व्यक्ति या पूज्य आचार्य द्वारा उपदिष्ट क्यों न हो उसे तब तक नहीं मानो जब तक अपने अनुभव से न जान लो कि यह कुशल है, दोषरहित है और अहित करने वाला तथा दुःख लाने वाला नहीं है। आजकल जब धर्माचार्य इस बात पर जोर देते हैं कि वे जो कहते हैं उसे बिना प्रश्न किये तथा हमारे पुराने शास्त्रों में जो लिखा है उसे भी बिना प्रश्न किये मानना है तो वे अंधश्रद्धा या अंधभक्ति को प्रश्रय देते हैं। भगवान का कालामों को दिया गया यह उपदेश विचारों के निबिड़तमाकाश में एक ऐसी विद्युत-रेखा है जो सर्वदा प्रकाश देती ही रहेगी।

'अन्यतैर्थिक सुत्त' में भगवान ने राग, द्वेष तथा मोह में अंतर दिखाते हुए एक अर्थ में द्वेष को राग से कम खतरनाक बताया है क्योंकि उससे मुक्ति सहज होती है – 'आयुष्मानो, राग में अल्प दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज नहीं, द्वेष में महान दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज है; मोह में महान दोष है और उससे भी मुक्ति सहज नहीं।' विपश्यना करते समय इस कथन की सत्यता स्पष्ट हो जाती है। दुःखद संवेदनाओं का अनुभव करते समय मनुष्य में स्वाभाविक रूप से जागरूकता और संप्रज्ञान अधिक रहता है परंतु सुखद संवेदनाओं का अनुभव करते समय उसमें आसक्त हो जाने का खतरा अधिक रहता है।

'उपोसथ सुत्त' में न केवल तीन प्रकार के उपोसथों जैसे गोपाल, निर्ग्रन्थ तथा आर्य उपोसथ का विस्तार से वर्णन है बल्कि भगवान द्वारा प्रतिपादित अष्टांग उपोसथ का भी वर्णन है। यहां भगवान ने जोर देकर कहा है कि इससे प्राप्त सुख की तुलना में कोई भी भौतिक ऐश्वर्य या मानुषी ऐश्वर्य या सुख इस सुख की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है। अष्टांग उपोसथ से दिव्य सुख मिलता है।

इसी सुत्त में भगवान ने विशाखा को कहा है कि जैसे मैले बदन को शंख से, चूने से, पानी से तथा अपने प्रयत्न से साफ किया जाता है, वैसे ही अपने मैले चित्त को उपाय से जैसे बुद्ध, धर्म तथा संघ का अनुस्मरण कर, अखंड-शील, अखंड-समाधि, तथा अखंड-प्रज्ञा का अनुस्मरण कर परिशुद्ध किया जाता है और राग-द्वेष आदि जो विकार हैं उन्हें दूर किया जाता है।

'सुगंधि सुत्त' में दिखाया गया है कि तीन प्रकार की सुगंधियां जैसे मूल सुगंधि, सार सुगंधि तथा पुष्प सुगंधि वायु के अनुकूल ही जाती है, प्रतिकूल नहीं, पर उस स्त्री या पुरुष की, जो 'बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणि-हिंसा से विरत रहते हैं..., दान का संविभाग करते हैं', सुगंधि वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी और अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।

अचेलक वर्ग में तीन प्रकार के मार्ग कहे गये हैं – शिथिल (आगाळह), कठोर (निज्झाम), और मध्यम। शिथिल मार्ग 'कामेसुकाम-सुखल्लिकानुयोग' है और कठोर मार्ग 'अत्तकिलमथानुयोग'। इसके अंतर्गत जिन कठोर तपश्चर्याओं का वर्णन है वे बुद्ध के समय समाज में अवश्य प्रचलित रही होंगी।

''यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई नग्न होता है, शिष्टाचार शून्य, हाथ चाटने वाला, 'भदंत आइये' कहने पर नहीं आने वाला, 'भदंत खड़े रहें' कहने पर खड़ा न रहने वाला, लाया हुआ न खाने वाला, उद्देश्य से बनाया हुआ न खाने वाला..., न गर्भिणी का दिया लेता है, न पुरुष के पास गयी हुई का दिया लेता है..., दिन में एक बार खाने वाला, दो दिन में एक बार खाने वाला... सात दिन में एक बार खाने वाला... शाक ... श्यामाक ... नीवार... दद्दुल... हट... कणाज... आचाम... तिनका... गोबर... फल-मूल खाने वाला होता है..., सन के कपड़े...सन-मिश्रित कपड़े...शव-वस्त्र... अजिन... कुशका बना वस्त्र पहनता है, केश-दाढ़ीका लुंचन करने वाला, निरंतर खड़ा रहने वाला, उकडूं बैठकर प्रयत्न करने वाला, कांटों की शय्या पर सोने वाला... होता है।"

इसी निपात के 'वेनागपुर सुत्त' में भगवान ने चार ध्यानों तथा तीन विहारों (दिव्य, ब्रह्म तथा आर्य) के बारे में वहां के ब्राह्मणों को बताया है।

यहां भगवान ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कई प्रकार के पुद्गल बताये हैं। 'समिद्ध सुत्त' में कायसाक्षी, दृष्टि-प्राप्त तथा श्रद्धा-विमुक्त; 'गूथभाणीसुत्त' में गूथभाषी, पुष्पभाषी, तथा मधुभाषी; 'अंध सुत्त' में अंधा, एक चक्षु वाला तथा दो चक्षु वाला; 'अवकुज्ज सुत्त' में अवकुब्ज प्रज्ञ, उत्संग प्रज्ञ तथा पृथु प्रज्ञ और 'लेख सुत्त' में पाषाण लेखूपमो (पाषाण पर खिंची रेखा के समान), पथवी लेखूपमो (पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान), तथा उदक लेखूपमो (पानी पर खिंची रेखा के समान) पुद्गल। इन सभी प्रकार के पुद्गलों का विस्तार से वर्णन अभिधर्म पिटक की पुस्तक 'पुग्गल पञ्ञत्ति' में है।

अंगुत्तर निकाय के इन निपातों का इसलिए भी महत्त्व है कि यहां कुछ ऐसी भी बातें हैं जो आधुनिक युग में बहुत ही प्रासंगिक हैं। आजकल राजनेताओं और अपराधियों में सांठ-गांठ बढ़ गयी है। राजनीति का अपराधीकरण हो गया है और अपराधी राजनीति करने लगे हैं जिसका बड़ा कुप्रभाव जन-जीवन पर पड़ रहा है। आजकल लोगों के समक्ष यह ज्वलंत विषय बन गया है कि इसमें कैसे सुधार लाया जाय। 'महाचोर सुत्त' इस दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें दिखाया गया है कि जो चोर राजा या राजा के महामात्यों का आश्रित होता है वह निर्भीक होकर चोरी करता है। उसे भय नहीं होता। पकड़ा जाने पर वह आश्वस्त रहता है कि उसके बचाव में राजा या राजा के महामात्य अवश्य कुछ करेंगे।

अंगुत्तर निकाय में बहुत-सी ऐसी बातें जो उस समय के सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं और वे बातें जो आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए आवश्यक हैं – सर्वत्र भरी पड़ी हैं।

इस अनुवाद के लिए विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि से प्रकाशित अंगुत्तर निकाय पालि को तथा इसे हिंदी पाठकों के लिए बोधगम्य बनाने के लिए (दिवंगत) भदंत आनंद कौसल्यायनजी के अंगुत्तर निकाय के अनुवाद को आधार बनाया गया है। इस बात पर कुछ मुद्दे प्रेषित हैं...

(१) अंगुत्तर निकाय का सर्वप्रथम हिंदी अनुवाद भदंत आनंद कौसल्यायनजी ने किया। हम उनके अत्यंत आभारी हैं जिन्होंने यह अनुवाद उस समय किया जब तिपिटक देवनागरी लिपि में प्राप्य नहीं थे तथा लोग पालि भाषा से परिचित होने की बात तो दूर रही, इसका नाम भी मुश्किल से जानते थे। किसी भी तरह के काम करने वाले पुरोगामियों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने वालों को तो और भी क्योंकि अनुवाद कठिन कार्य है। एक भाषा की वाक्य संरचना, उसके मुहावरे तथा उसकी शैली दूसरी भाषा से भिन्न होती है। पालि भाषा तथा बौद्ध वाङ्मय से हिंदी पाठकों को परिचित कराने में भिक्षु-त्रयी (राहुल जी, आनंद जी तथा काश्यपजी) का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जहां तक पालि भाषा का प्रश्न है उससे हिंदी में अनुवाद करना कई दृष्टियों से कठिन कार्य है। एक तो यह कि पालि त्रिपिटक में जो बुद्धवचन है उसमें कई ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनका समानार्थक हिंदी में नहीं मिलता। अगर ध्यान से देखा जाय तो सुत्तपिटक में अभिधर्म के तत्त्व भरे पड़े हैं और अभिधर्म मनोनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन है रूप और नाम का अर्थात जिसमें पारिभाषिक शब्दों का बाहुल्य है। इसलिए सुत्तपिटक भी वैसे शब्दों से भरे पड़े हैं जो पारिभाषिक कहे जा सकते हैं। जैसे कि पहले भी सूचित किया है, अंगुत्तर निकाय में भी ऐसे बहुत सारे शब्द हैं।

(२) भदंत आनंद कौसल्यायन जी का अंगुत्तर निकाय का हिंदी अनुवाद अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर है। फिर भी कई दृष्टियों से इसमें सुधार की अपेक्षा थी ताकि हिंदी के पाठकों को बुद्ध-वचन समझने में कठिनाई न हो। भदंत जी के समय में विपश्यना ध्यान की जीवंत परंपरा भारत में विद्यमान न होने से ध्यानविधि के पारिभाषिक शब्दों का सही अर्थ जानना मुश्किल रहा जो कि अब संभव है।

इस अनुवाद में जिस तरह के सुधार किये गये हैं, उनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

आधुनिक हिंदी के अनुरूप बनाने के लिए जहां भदंत जी ने 'येन सावत्थियं तेन उपसङ्कमि' का अनुवाद 'जहां श्रावस्ती थी वहां गये' तथा 'येन भगवा तेन उपसङ्कमि' का अनुवाद 'जहां भगवान थे, वहां गये' किया था, उनके स्थान पर क्रमशः 'श्रावस्ती गये' और 'भगवान के पास गये' यह अनुवाद किया गया है। 'जहां भगवान थे वहां गये' – यह तो कुछ दूर तक ठीक भी लगता है क्योंकि भगवान एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते ही रहते थे, पर 'स्थान' के बारे में ऐसा कहना ठीक नहीं लगता। 'जहां श्रावस्ती थी वहां गये' से ध्वनित होता है कि श्रावस्ती भी भगवान बुद्ध की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान जाती रहती थी। अंग्रेजी में इन वाक्यांशों का अनुवाद – 'वह श्रावस्ती गये' तथा 'वह भगवान के पास गये' से किया गया है जो आधुनिक हिंदी के अनुरूप है। 'येन सावत्थियं तेन उपसङ्कमि' पालि की एक शैली है। इसका अक्षरशः अनुवाद आधुनिक हिंदी के अनुरूप नहीं होगा। दूसरे तरह के सुधार, कुछ शब्दों से, विशेषकर पारिभाषिक शब्दों से संबंधित हैं। जैसे 'समनुपस्सामि, अयोनिसो मनसिकारो, पटिघनिमित्तं, व्यापादो, पजानाति, सम्पजञ्ञं, रत्तञ्ञूनं, अप्पटिभाणता, दिट्ठधम्मिको, चेतोविमुत्ति, पञ्ञाविमुत्ति, उपधिसुखं, निरुपधिसुखं, अक्खातं तथा सन्थारा आदि। पाठकों की सुविधा के लिए इनमें से कुछेक को पादटिप्पणियों में स्पष्ट किया गया है।

इनके अतिरिक्त कुछ वाक्य खण्डों के अर्थों पर भी सम्यक विचार किया गया है – जैसे 'महतो चक्खुस्स पातुभावो होति', 'धातानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति', 'काये कायानुपस्सी विहरति आदि।

कहीं पर पालि में निहित भाव के लिए हिंदी का नया शब्द गढ़ा गया है जैसे पालि 'निरासो' के लिए हिंदी 'शून्याश'।

(३) पालि के कुछ शब्द हैं जिनका संस्कृत रूप 'बुद्धिस्ट हायब्रिड संस्कृत कोश' में दिया गया है और जो उन्हीं अर्थों में प्रयोग किये गये हैं जिनमें पालि के शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैसे संस्कृत रूप को रख लिया गया है ताकि हिंदी भाषा समृद्ध हो सके – जैसे प्रग्रह (पा. पग्गह), प्रदास (पा. पलास), कौकृत्य (पा. कुक्कुच्च), व्यक्त (पा. ब्यत्त), प्रत्युपस्थान (पा. पच्चुपट्ठान) आदि रखे गये हैं।

यद्यपि कौकृत्य(पा. कुक्कुच्च),व्यक्त (पा. व्यत्त), प्रत्युपस्थान (पा. पच्चुपट्ठान) आदि शब्द हिंदी कोश में नहीं मिलते, पर एडगर्टन के बुद्धिस्ट संस्कृत कोश में मिलते हैं। अतः इन्हें अनुवाद में रखना उचित है। हिंदी भाषा इन पारिभाषिक शब्दों को आत्मसात कर समृद्ध ही होगी। पालि के बाद के संस्कृत बौद्ध वाङ्मय में इन शब्दों का प्रयोग उन्हीं अर्थों में हुआ है जिनमें उनके पालि शब्दों का हुआ है।

(४) इनके अतिरिक्त यहां कुछ और शब्दों की व्याख्या दी जा रही है जिससे पाठकों को अनुवाद समझने में आसानी होगी।

नीवरण – ध्यान आदि कुशल धर्मों के उत्पन्न होने में जो बाधक हैं, जो निवारण करने वाले धर्म हैं उन्हें नीवरण कहते हैं। **'ज्ञानादिकं निवारेन्तीति नीवरणानि'**। नीवरण पांच हैं – कामच्छन्द (कामेच्छा, लोभ), व्यापाद (द्वेष), थीनमिद्ध (आलस्य), उद्धच्चकुक्कुच्च(उद्धतपन तथा पश्चात्ताप) और विचिकिच्छा (संदेह, संशय)।

शमथ और विपश्यना – **'किलेसे समेतीति समथो'** अर्थात कामच्छन्द आदि नीवरण क्लेशों का शमन करने वाला धर्म शमथ है। **'विसेसेन पस्सतीति विपस्सना'** अर्थात धर्मों को विशेष रूप से देखनेवाली प्रज्ञा विपश्यना है। शमथ चित्त की एकाग्रता को कहते हैं –'**समथोति चित्तेकग्गतां**। विपश्यना संस्कार को पूर्णतः समझने वाला ज्ञान है –'**विपस्सनाति सङ्खारपरिग्गाहकञाणं**।

(५) **'अयोनिसो मनसिकारो'** का अर्थ गलत ढंग से चिंतन है, बेढंगा विचार करने से है, अयथार्थ को यथार्थ समझना है। अनित्य को नित्य समझना, दुःख को सुख, अनात्म को आत्मा और अशुभ को शुभ समझना अयोनिसो मनसिकार है। इसके विपरीत चिंतन को'योनिसो मनसिकारो' कहा जाता है।

कई जगहों पर कुछ शंकाओं का समाधान नहीं मिलने पर उन मुद्दों को पू. गोयन्काजी के समक्ष रखा गया और उन्होंने आनुभूतिक स्तर पर प्राप्त किये ज्ञान से जो बहुमूल्य सुझाव दिये उसी के आलोक में यह सुधारा हुआ अनुवाद प्रस्तुत है। अगर पाठकों को कहीं भी शंका स्थल दिखे या भाषा की भूल दिखाई पड़े तो अवश्य सूचित करें ताकि उनका यथाशीघ्र सुधार किया जा सके।

सब के प्रति मंगल कामना करते हुए यह अनुवाद हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है सद्धर्म को समझने व धारण करने में यह पाठकों के लिए प्रेरणास्पद सिद्ध होगा।

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी